

SAMVARDHINI :- 01/06/2026

Volume – 8

Issue – 1

(ISSN ONLINE:- 2583-7176)

<https://samvardhini.in>



डॉ. अमित शर्मा

सहायकाचार्य, संस्कृत विभाग

डी.ए.वी. शताब्दी महाविद्यालय, फरीदाबाद

ई-मेल: davccf.sanskrit@gmail.com

वैदिक जीवन-दृष्टि एवं समकालीन वैश्विक चुनौतियाँ

डॉ. अमित शर्मा

सारांश –

इक्कीसवीं सदी विज्ञान, तकनीक और वैश्वीकरण की तीव्र प्रगति की साक्षी है। आधुनिक आविष्कारों और डिजिटल क्रांति ने मानव जीवन को सुविधाजनक तो बनाया है, किंतु इसके साथ ही अनेक गम्भीर वैश्विक संकट भी उत्पन्न हुए हैं। पर्यावरणीय असंतुलन, जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन, नैतिक मूल्यों का हास, मानसिक तनाव, उपभोक्तावाद, सामाजिक विघटन तथा बढ़ती हिंसा आज मानव सभ्यता के समक्ष प्रमुख चुनौतियाँ हैं। यह स्थिति स्पष्ट करती है कि केवल भौतिक उन्नति मानव जीवन को संतुलित, शांत और सार्थक नहीं बना सकती।

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मनुष्य की समस्याएँ केवल बाह्य नहीं, बल्कि आंतरिक भी हैं। अत्यधिक प्रतिस्पर्धा, स्वार्थपरक जीवन-शैली और मूल्यहीन विकास ने व्यक्ति को मानसिक अशांति और आत्मिक रिक्तता की ओर धकेल दिया है। ऐसे समय में यह प्रश्न अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है कि क्या प्राचीन ज्ञान-परंपराएँ आधुनिक मानव को दिशा दे सकती हैं। इसी संदर्भ में वैदिक जीवन-दृष्टि का पुनर्मूल्यांकन आवश्यक प्रतीत होता है। वैदिक चिंतन जीवन को समग्र दृष्टि से देखने की प्रेरणा देता है। वेद मनुष्य, समाज, प्रकृति और ब्रह्माण्ड के बीच संतुलित एवं नैतिक संबंध स्थापित करते हैं। ऋत, धर्म, कर्म और यज्ञ जैसे सिद्धांत मनुष्य को कर्तव्यनिष्ठा, संयम और लोककल्याण की ओर उन्मुख करते हैं। वैदिक दृष्टि में प्रकृति शोषण की वस्तु नहीं, बल्कि पूज्य एवं संरक्षणीय सत्ता है, जो आज के पर्यावरणीय विमर्श से पूर्णतः सामंजस्य रखती है।

अतः यह कहा जा सकता है कि वैदिक जीवन-दृष्टि किसी एक युग तक सीमित न होकर सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक है। समकालीन वैश्विक चुनौतियों के समाधान हेतु यदि वैदिक मूल्यों को आधुनिक संदर्भों में अपनाया जाए, तो मानव सभ्यता को एक अधिक संतुलित, नैतिक और शांतिपूर्ण दिशा प्रदान की जा सकती है।

मुख्य शब्द: – वैदिक जीवन-दृष्टि, वैश्विक चुनौतियाँ, धर्म, सहअस्तित्व, पर्यावरणीय नैतिकता, मानसिक संतुलन, वसुधैव कुटुम्बकम्।

वैदिक जीवन-दृष्टि का स्वरूप

वैदिक जीवन-दृष्टि भारतीय चिंतन-परंपरा की आधारशिला है, जो जीवन को एक समग्र, संतुलित और नैतिक प्रक्रिया के रूप में देखती है। इसका मूल आधार ऋत, धर्म, कर्म, सहअस्तित्व और समन्वय है। ऋत वैदिक चिंतन में ब्रह्माण्डीय नियम और नैतिक व्यवस्था का प्रतीक है, जो प्रकृति, समाज और व्यक्ति-तीनों में संतुलन बनाए रखता है। ऋग्वेद में कहा गया है-“ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।”¹ अर्थात् सृष्टि का संचालन ऋत और सत्य के नियमों से होता है। इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक जीवन-दृष्टि सत्यनिष्ठा और नैतिक अनुशासन को जीवन का आधार मानती है।

वेद मनुष्य को केवल भौतिक उपभोक्ता नहीं, बल्कि शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक स्तर पर विकसित होने वाला चेतन प्राणी स्वीकार करते हैं। उपनिषदों में आत्मा की चेतना को जीवन का केंद्र माना गया है-“आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।”² यह कथन आत्मज्ञान को मानव जीवन का परम लक्ष्य स्थापित करता है, जिससे वैदिक दृष्टि की आध्यात्मिक गहराई स्पष्ट होती है।

सामाजिक स्तर पर वैदिक जीवन-दृष्टि सहयोग, संवाद और सामूहिकता पर बल देती है। ऋग्वेद का प्रसिद्ध मंत्र-“संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।”³ सामाजिक समरसता, लोकतांत्रिक चेतना और वैश्विक शांति का आदर्श प्रस्तुत करता है। यह मंत्र आज के विखंडित और संघर्षग्रस्त विश्व में विशेष प्रासंगिक प्रतीत होता है।

वैदिक चिंतन में जीवन का उद्देश्य केवल इंद्रिय-सुख नहीं, बल्कि पुरुषार्थ-चतुष्टय-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-के संतुलन द्वारा पूर्णता की प्राप्ति है। मनुस्मृति में कहा गया है-“धर्मेणैव हि अर्थश्च कामश्च उपसेवितौ।”⁴ अर्थात् अर्थ और काम की प्राप्ति भी धर्म के अधीन रहकर ही सार्थक होती है। यही संतुलन वैदिक जीवन-दृष्टि को भोगवाद से अलग करता है।

कर्म-सिद्धांत वैदिक दर्शन का व्यावहारिक पक्ष है। भगवद्गीता में कर्मयोग को जीवन का मार्ग बताया गया है-“कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।”⁵ यह श्लोक निष्काम कर्म, कर्तव्यनिष्ठा और मानसिक संतुलन की शिक्षा देता है। इस प्रकार वैदिक जीवन-दृष्टि व्यक्ति, समाज और प्रकृति के बीच सामंजस्य स्थापित करने वाला एक सार्वकालिक, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन-दर्शन प्रस्तुत करती है, जो समकालीन वैश्विक चुनौतियों के समाधान हेतु आज भी अत्यंत प्रासंगिक है।

समकालीन वैश्विक चुनौतियाँ

समकालीन विश्व तकनीकी उन्नति और वैश्वीकरण के चरम पर है, किंतु इसके साथ-साथ मानव सभ्यता गहरे संरचनात्मक संकटों से भी गुजर रही है। आधुनिक विकास की अवधारणा ने आर्थिक वृद्धि और उपभोग को जीवन का केंद्रीय लक्ष्य बना दिया है, जिसके परिणामस्वरूप प्रकृति, समाज और व्यक्ति-तीनों के साथ असंतुलन उत्पन्न हुआ है। पर्यावरणीय संकट, नैतिक पतन, मानसिक तनाव तथा सामाजिक विघटन जैसे मुद्दे यह स्पष्ट करते हैं कि वर्तमान वैश्विक व्यवस्था को केवल वैज्ञानिक या आर्थिक समाधानों से संतुलित नहीं किया जा सकता। इसके लिए एक मूल्याधारित, समग्र और दीर्घकालिक दृष्टि की आवश्यकता है।

1. पर्यावरणीय संकट

समकालीन वैश्विक चुनौतियों में पर्यावरणीय संकट सर्वाधिक गम्भीर, जटिल तथा दूरगामी परिणाम उत्पन्न करने वाला संकट है। जलवायु परिवर्तन, वैश्विक तापवृद्धि, हिमनदों का पिघलना, समुद्र-स्तर में वृद्धि, वायुमण्डलीय एवं जल-प्रदूषण, वनों की अन्धाधुन्ध कटाई तथा जैव-विविधता का तीव्र क्षरण-ये सभी समस्याएँ मानव की अविवेकपूर्ण विकास-प्रक्रिया का प्रत्यक्ष परिणाम हैं। आधुनिक औद्योगिकीकरण, तकनीकी विस्तार, असीम उपभोगवाद तथा लाभ-केंद्रित आर्थिक संरचना ने प्रकृति को संसाधन-मात्र मानकर उसके दोहन को वैध ठहरा दिया है। फलस्वरूप पृथ्वी का पारिस्थितिक संतुलन संकटग्रस्त हो गया है और मानव सभ्यता स्वयं अपने अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न खड़ा कर रही है।

वैदिक जीवन-दृष्टि इस संकट के मूल में निहित मनोवृत्ति को ही परिवर्तित करने का आग्रह करती है। वेदों में प्रकृति को जड़ या निर्जीव वस्तु न मानकर चेतन, पवित्र और पूज्य सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। अथर्ववेद का प्रसिद्ध उद्धोष-**“माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।”**⁶ मनुष्य को पृथ्वी का स्वामी नहीं, बल्कि उसका उत्तरदायी पुत्र घोषित करता है। यह भाव आधुनिक पर्यावरण-नैतिकता (environmental ethics) का आधार बन सकता है, जहाँ अधिकार से अधिक कर्तव्य को महत्त्व दिया जाता है।

ऋग्वेद में प्रकृति के विभिन्न तत्त्व-जल, वायु, अग्नि, सूर्य, पृथ्वी और वनस्पति-दैवी शक्तियों के रूप में स्तुत हैं। जल को जीवनदायिनी अमृततुल्य शक्ति मानते हुए कहा गया है-**“आपः स्वयोनिः।”**⁷ इसी प्रकार सूर्य को सम्पूर्ण सृष्टि का प्राण कहा गया है- **“सूर्य आत्मा जगत्तस्तस्थुषश्च।”**⁸ ये मंत्र यह स्पष्ट करते हैं कि वैदिक समाज में प्राकृतिक तत्त्वों के साथ सम्मान, कृतज्ञता और संयम का सम्बन्ध था, न कि शोषण का।

यज्ञ की वैदिक अवधारणा को भी केवल कर्मकाण्डीय परिप्रेक्ष्य में न देखकर पारिस्थितिक संतुलन के प्रतीक रूप में समझना आवश्यक है। यज्ञ वस्तुतः परस्पर पोषण, त्याग और समन्वय की प्रक्रिया है। भगवद्गीता में कहा गया है-**“अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।”**⁹ यह श्लोक मानव, प्रकृति और ब्रह्माण्डीय व्यवस्था के परस्पर सम्बन्ध को स्पष्ट करता है। आज की ‘सतत विकास’ (sustainable development) की संकल्पना इसी वैदिक यज्ञ-दृष्टि का आधुनिक वैज्ञानिक रूपांतरण प्रतीत होती है।

उपनिषदों में भी समस्त सृष्टि में एकत्व का बोध कराया गया है- **“ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।”**¹⁰ इस मंत्र के अनुसार सम्पूर्ण जगत् ईश्वर से आवृत्त है; अतः किसी भी प्राकृतिक तत्त्व का अतिक्रमण या विनाश आध्यात्मिक अपराध के समान है। यह दृष्टि आधुनिक पारिस्थितिकी चिन्तन (ecological consciousness) को गहन नैतिक आधार प्रदान करती है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी वैदिक सिद्धान्तों के आलोक में प्रकृति-संरक्षण पर विशेष बल दिया। उनके अनुसार वेद मनुष्य को “भोगवादी उपभोक्ता” नहीं, बल्कि “कर्तव्यनिष्ठ संरक्षक” बनाते हैं। आधुनिक पर्यावरणीय संकट का समाधान केवल तकनीकी उपायों से नहीं, अपितु जीवन-दृष्टि के परिवर्तन से सम्भव है-और यह परिवर्तन वैदिक चिन्तन सहज रूप से प्रदान करता है।¹¹

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि पर्यावरणीय संकट का समाधान वैदिक जीवन-दृष्टि में निहित सहअस्तित्व, संयम, कृतज्ञता और उत्तरदायित्व की भावना को पुनः जागृत करने में निहित है। आधुनिक वैश्विक नीतियाँ यदि इस वैदिक दृष्टिकोण को आत्मसात करें, तो मानव और प्रकृति के बीच बिगड़ा हुआ संतुलन पुनः स्थापित किया जा सकता है।

2. नैतिक एवं मूल्यगत संकट

समकालीन वैश्विक परिदृश्य में नैतिक एवं मूल्यगत संकट मानव सभ्यता के लिए एक गम्भीर चिन्तन का विषय बन चुका है। आधुनिक समाज में भौतिक समृद्धि, आर्थिक लाभ और उपभोग को जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि मान लिया गया है। इस एकांगी दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप सत्य, ईमानदारी, कर्तव्यबोध, करुणा, संयम तथा सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे मानवीय मूल्य क्रमशः हाशिये पर चले गए हैं। राजनीति में अवसरवाद, प्रशासन में भ्रष्टाचार, शिक्षा में व्यवसायीकरण तथा अर्थव्यवस्था में अनैतिक प्रतिस्पर्धा-ये सभी मूल्यहीनता के स्पष्ट संकेत हैं। व्यक्ति की सफलता को केवल बाह्य उपलब्धियों से आँकने की प्रवृत्ति ने आन्तरिक चरित्र और नैतिक चेतना को दुर्बल कर दिया है।

वैदिक जीवन-दृष्टि इस नैतिक संकट का समाधान मूलतः ‘धर्म’ की व्यापक अवधारणा में प्रस्तुत करती है। वेदों में धर्म का अर्थ किसी संकीर्ण धार्मिक आस्था या कर्मकाण्ड तक सीमित नहीं है, अपितु वह वह नैतिक-सामाजिक व्यवस्था है जो व्यक्ति, समाज और सृष्टि को संतुलित रखती है। स्मृतियों में कहा गया है- “धर्मो धारयति प्रजाः।” अर्थात् धर्म वही है जो सम्पूर्ण प्रजा को धारण करता है और सामाजिक जीवन को स्थायित्व प्रदान करता है। यह कथन धर्म को सामाजिक नैतिकता की केन्द्रीय धुरी के रूप में स्थापित करता है।

उपनिषदों में सत्य को जीवन का सर्वोच्च मूल्य माना गया है। मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है- “सत्येन पन्था विततो देवयानः।”¹² अर्थात् सत्य के द्वारा ही देवयान मार्ग प्रशस्त होता है। यहाँ सत्य केवल वाणी की सच्चाई नहीं, बल्कि विचार, आचरण और जीवन-दृष्टि की शुद्धता का प्रतीक है। इसी प्रकार तैत्तिरीयोपनिषद् में गुरु शिष्य को उपदेश देता है- “सत्यं वद, धर्मं चर।”¹³ यह उपदेश नैतिक जीवन का संक्षिप्त किन्तु अत्यन्त गहन सूत्र है।

ऋग्वेद में ‘ऋत’ की अवधारणा नैतिक व्यवस्था का आधार प्रस्तुत करती है। ऋत का अर्थ है-सत्य, नियम और समन्वय पर आधारित ब्रह्माण्डीय व्यवस्था। “ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायता।”¹⁴ इस मंत्र में ऋत और सत्य को सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण बताया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक चिन्तन में नैतिकता कोई मानवनिर्मित संकल्पना नहीं, बल्कि सृष्टि-व्यवस्था का अभिन्न अंग है।

महाभारत और भगवद्गीता में भी नैतिक कर्म को जीवन का आधार माना गया है। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं- “श्रेयः स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।”¹⁵ यह श्लोक व्यक्ति को अपने कर्तव्य के प्रति निष्ठावान रहने की प्रेरणा देता है, भले ही उसमें तत्काल लाभ न हो। आज के नैतिक संकट में यह शिक्षा अत्यन्त प्रासंगिक है, जहाँ व्यक्ति प्रायः अल्पकालिक लाभ के लिए नैतिक मर्यादाओं का उल्लंघन कर बैठता है।

योगदर्शन में प्रतिपादित यम और नियम-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह-वैदिक नैतिकता का व्यवस्थित स्वरूप हैं।¹⁶ ये मूल्य आज के वैश्विक नैतिक शिक्षा, मानवाधिकार और सामाजिक न्याय की अवधारणाओं

के मूल में विद्यमान हैं। महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित सत्य और अहिंसा की नीति भी इसी वैदिक-योगिक परम्परा का आधुनिक रूप है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वैदिक धर्म को “नैतिक विवेक पर आधारित सार्वभौमिक जीवन-व्यवस्था” के रूप में प्रस्तुत किया। उनके अनुसार वेदों का उद्देश्य मनुष्य को सदाचारी, कर्तव्यनिष्ठ और समाजोपयोगी बनाना है, न कि केवल धार्मिक पहचान देना। आधुनिक नैतिक संकट का समाधान बाह्य कानूनों से नहीं, बल्कि आन्तरिक आत्मानुशासन से सम्भव है- और यह आत्मानुशासन वैदिक जीवन-दृष्टि सहज रूप से विकसित करती है।¹⁷

अतः यह कहा जा सकता है कि समकालीन नैतिक एवं मूल्यगत संकट का समाधान वैदिक धर्म-बोध, सत्यनिष्ठ आचरण, कर्तव्यपरायणता और सामाजिक उत्तरदायित्व की पुनः स्थापना में निहित है। यदि आधुनिक वैश्विक समाज इन वैदिक मूल्यों को आत्मसात करे, तो नैतिक पतन की वर्तमान प्रवृत्ति को रोका जा सकता है और एक न्यायपूर्ण, संवेदनशील तथा संतुलित विश्व-व्यवस्था की स्थापना सम्भव हो सकती है।

3. मानसिक तनाव एवं असंतुलन

समकालीन वैश्विक समाज में मानसिक तनाव, अवसाद, चिन्ता और भावनात्मक अस्थिरता एक गम्भीर स्वास्थ्य-संकट का रूप ले चुकी है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार मानसिक रोग आज कार्यक्षमता हास का प्रमुख कारण बनते जा रहे हैं। तीव्र प्रतिस्पर्धा, निरन्तर कार्य-दबाव, आर्थिक असुरक्षा, सामाजिक अपेक्षाएँ तथा उपभोक्तावादी जीवन-शैली ने मनुष्य के चित्त को निरन्तर अशान्त बनाए रखा है। बाह्य सुख-साधनों की उपलब्धता बढ़ने के बावजूद आन्तरिक सन्तोष का अभाव स्पष्ट दिखाई देता है। व्यक्ति ‘अधिक पाने’ की दौड़ में ‘स्वयं को समझने’ की क्षमता खो बैठा है, जिसके परिणामस्वरूप मानसिक असंतुलन गहराता जा रहा है।

वैदिक जीवन-दृष्टि में मानसिक शान्ति को जीवन का परम उद्देश्य स्वीकार किया गया है। वैदिक प्रार्थनाओं में बार-बार शान्ति की कामना की गई है। यह शान्ति केवल बाह्य सामाजिक व्यवस्था तक सीमित नहीं, अपितु आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक-तीनों स्तरों पर मनुष्य के संतुलन का द्योतक है। यजुर्वेद में कहा गया है- “द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः... शान्तिरेव शान्तिः ।”¹⁸ अथर्ववेद में कहा गया है- “शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदं सर्वं जगत्”¹⁹ - यहाँ अन्तःकरण-शान्ति का स्पष्ट संकेत मिलता है। जिससे स्पष्ट होता है कि मन की शान्ति वैदिक चिन्तन का मूल लक्ष्य है।

उपनिषद् मानसिक असंतुलन का मूल कारण आत्मविस्मृति को मानते हैं। कठोपनिषद् में कहा गया है-“नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः न मेधया न बहुना श्रुतेन”²⁰ अर्थात् आत्मा न तो केवल बौद्धिक ज्ञान से और न ही बाह्य सूचनाओं से प्राप्त होती है। यह कथन आधुनिक सूचना-युग के उस भ्रम को तोड़ता है, जिसमें ज्ञान-संचय को मानसिक सुख का साधन मान लिया गया है। उपनिषदों के अनुसार आत्मज्ञान ही वास्तविक मानसिक मुक्ति का मार्ग है। “यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह”²¹ यह योग की उस अवस्था का वर्णन है जहाँ इन्द्रियाँ और मन स्थिर होकर शान्ति को प्राप्त करते हैं।

वेदों में यज्ञ को भी मानसिक शुद्धि और संतुलन का साधन माना गया है। ऋग्वेद में यज्ञ को ऋत का आधार कहा गया है- “ऋतेन दीक्षा ऋतं यज्ञं उपैति।”²² यज्ञ केवल कर्मकाण्ड नहीं, बल्कि अनुशासित, संयमित और सामूहिक जीवन-पद्धति का प्रतीक है, जो मानसिक स्थिरता प्रदान करता है।

वैदिक जीवन-पद्धति में यज्ञ, ध्यान, स्वाध्याय और आत्मसंयम को मानसिक स्वास्थ्य का आधार माना गया है। तैत्तिरीयोपनिषद् का निर्देश-“स्वाध्यायप्रवचने च।”²³ यह दर्शाता है कि आत्मचिन्तन और अध्ययन मानसिक संतुलन के आवश्यक साधन हैं। इसी प्रकार ईशोपनिषद् में कहा गया है-“तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः।”²⁴ त्याग-बोध और संयम की यह शिक्षा आधुनिक भोगवादजन्य मानसिक अशान्ति का प्रभावी प्रतिकार प्रस्तुत करती है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मानसिक पतन का कारण आत्मसंयम के अभाव को बताया और वेदों को “मानसिक तथा नैतिक स्वास्थ्य का शाश्वत शास्त्र” कहा। उनके अनुसार वेद मनुष्य को बाह्य उपलब्धियों से नहीं, आन्तरिक अनुशासन से सुखी बनाते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि समकालीन मानसिक तनाव और असंतुलन का समाधान केवल औषधियों या बाह्य सुविधाओं में नहीं, बल्कि वैदिक आत्मबोध, कर्मयोग, योगाभ्यास और संयमित जीवन-शैली में निहित है। वैदिक जीवन-दृष्टि मनुष्य को ‘भोग से योग’ और ‘अशान्ति से शान्ति’ की ओर ले जाने वाली एक सुदृढ़, वैज्ञानिक और आध्यात्मिक मार्गदर्शिका प्रदान करती है।

सामाजिक विघटन एवं वैश्विक असमानता

समकालीन वैश्विक परिदृश्य में सामाजिक विघटन और असमानता मानव सभ्यता के समक्ष एक गम्भीर चुनौती के रूप में उभरकर सामने आई है। जाति, वर्ग, नस्ल, राष्ट्र, धर्म और आर्थिक स्थिति के आधार पर समाज का निरन्तर विभाजन हो रहा है। एक ओर अत्यधिक सम्पन्न वर्ग है, तो दूसरी ओर विशाल जनसंख्या मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित है। सामाजिक न्याय, समान अवसर और मानवीय गरिमा जैसे आदर्श व्यवहार में क्षीण होते जा रहे हैं। परिणामस्वरूप सामाजिक संघर्ष, हिंसा, युद्ध, विस्थापन और शरणार्थी संकट जैसी समस्याएँ वैश्विक स्तर पर गहराती जा रही हैं।

वैदिक जीवन-दृष्टि इस सामाजिक संकट का समाधान समन्वय, समानता और सहअस्तित्व के सिद्धान्तों में प्रस्तुत करती है। ऋग्वेद में मानव समाज को एक संगठित इकाई के रूप में देखने की प्रेरणा दी गई है-“अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो वावृधुः सौभगाय।”²⁵ इस मंत्र में यह स्पष्ट किया गया है कि समाज में कोई ऊँचा या नीचा नहीं, अपितु सभी परस्पर सहयोग से उन्नति करते हैं। यह वैदिक दृष्टि सामाजिक समता और समान सम्मान की आधारशिला प्रस्तुत करती है।

अथर्ववेद में सामाजिक एकता और परस्पर सौहार्द का स्पष्ट आह्वान मिलता है-“सहृदयं सामनस्यं अविद्वेषं कृणोमि वः।”²⁶ अर्थात् मैं तुम्हारे भीतर एक हृदय, एक मन और परस्पर द्वेषरहित भाव उत्पन्न करता हूँ। यह मंत्र सामाजिक विघटन और वैमनस्य के विरुद्ध वैदिक समाधान प्रस्तुत करता है। आज के संघर्षग्रस्त समाज में यह भावना अत्यन्त प्रासंगिक है।

वैदिक चिंतन में सामाजिक व्यवस्था का आधार 'ऋत' और 'धर्म' है। यजुर्वेद में कहा गया है-“ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी।”²⁷ जिस प्रकार प्रकृति में स्थिरता और संतुलन है, उसी प्रकार समाज में भी न्याय और मर्यादा का होना आवश्यक है। जब समाज धर्म से विचलित होता है, तब असमानता और शोषण जन्म लेते हैं।

वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा वैदिक मानवतावाद का सर्वोच्च आदर्श है-“अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्। उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥”²⁸ यह दृष्टि सम्पूर्ण मानवता को एक परिवार के रूप में देखने की प्रेरणा देती है। आधुनिक वैश्विक नागरिकता (Global Citizenship) और मानवाधिकार की संकल्पना इसी वैदिक भाव का विकसित रूप कही जा सकती है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सामाजिक असमानता और जातीय भेदभाव का कठोर विरोध किया। उनके अनुसार वर्ण-व्यवस्था जन्म पर नहीं, गुण, कर्म और स्वभाव पर आधारित है। सत्यार्थप्रकाश में वे स्पष्ट कहते हैं कि जन्म के आधार पर ऊँच-नीच का भेद वेद-विरुद्ध है। उन्होंने वेदों को सामाजिक समता, नारी-शिक्षा और समान अधिकारों का मूल स्रोत बताया। दयानन्द सरस्वती का मत था कि जब तक समाज वेदाधारित न्याय और नैतिकता को स्वीकार नहीं करेगा, तब तक सामाजिक विघटन समाप्त नहीं हो सकता।²⁹

ऋग्वेद का प्रसिद्ध सूक्त सामाजिक समन्वय का सार्वभौमिक संदेश देता है-“संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।” यह मंत्र संवाद, सहयोग और मानसिक एकता के माध्यम से सामाजिक संघर्षों के समाधान की दिशा दिखाता है। युद्ध और हिंसा से ग्रस्त आधुनिक विश्व के लिए यह मंत्र अत्यन्त सार्थक प्रतीत होता है।

इस प्रकार वैदिक जीवन-दृष्टि सामाजिक विघटन और वैश्विक असमानता के समाधान हेतु एक समग्र मानवतावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। इसमें न तो संकीर्ण राष्ट्रवाद है, न ही वर्ग-संघर्ष की भावना; अपितु करुणा, न्याय, समता और सहअस्तित्व का संतुलित समन्वय है। स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित वेदाधारित सामाजिक सुधार-दृष्टि आज भी एक न्यायपूर्ण, समरस और शान्तिपूर्ण वैश्विक समाज की स्थापना हेतु मार्गदर्शक सिद्ध हो सकती है।

निष्कर्ष

आज का वैश्विक परिदृश्य विज्ञान, तकनीक और वैश्वीकरण की अभूतपूर्व प्रगति के बावजूद अनेक गम्भीर संकटों से ग्रस्त है। जलवायु परिवर्तन, वनों और जैवविविधता का क्षरण, प्रदूषण और प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध शोषण पृथ्वी के पारिस्थितिक संतुलन को बाधित कर रहे हैं। समाज में नैतिक मूल्यों का पतन, सत्य और ईमानदारी की अवहेलना, सामाजिक उत्तरदायित्व की अनदेखी, और भौतिक सफलता के प्रति एकांगी प्रवृत्ति मानसिक तनाव, अवसाद और आन्तरिक असंतुलन को जन्म दे रही है। इसके अतिरिक्त जाति, वर्ग, धर्म और राष्ट्र के आधार पर सामाजिक विभाजन असमानता, हिंसा और संघर्ष को बढ़ावा दे रहे हैं।

वैदिक जीवन-दृष्टि इन समकालीन संकटों का समाधान समग्र और स्थायी रूप में प्रस्तुत करती है। वेदों में प्रकृति को माता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है-“माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।” यह दृष्टि पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास की नींव रखती है। यज्ञ और ऋतु आधारित वैदिक कर्म-पद्धति प्रकृति के साथ सहजीवन का संदेश देती है।

नैतिक और मूल्यगत संकट के समाधान के लिए वैदिक दर्शन सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह जैसी आदर्श चरित्र-गुणों को जीवन का आधार मानता है। उपनिषद् और भगवद्गीता कर्मयोग और आत्मबोध द्वारा मनुष्य को फलासक्ति से मुक्त होने की शिक्षा देते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इन मूल्यों को सार्वभौमिक नैतिक शिक्षा और सामाजिक सुधार का मार्गदर्शक बताया।

मानसिक तनाव और असंतुलन के संदर्भ में योग, ध्यान, प्राणायाम, आत्मसंयम और यज्ञ वैदिक जीवन-दृष्टि के प्रभावी साधन हैं। कठोपनिषद् और योगसूत्र चित्त-नियंत्रण और मानसिक स्थिरता के वैदिक विज्ञान का प्रतिपादन करते हैं। स्वामी दयानन्द ने इन्हें मानसिक रोग और अवसाद के निवारण हेतु अनिवार्य बताया।

सामाजिक विघटन और असमानता के समाधान के लिए वैदिक दर्शन संगच्छध्वं संवदध्वं, वसुधैव कुटुम्बकम् और सामाजिक समरसता की दृष्टि प्रस्तुत करता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जातिवाद और अंधविश्वास का विरोध करते हुए वेदों पर आधारित समानता और न्याय का मार्ग प्रशस्त किया।

सारांशतः, वैदिक जीवन-दृष्टि व्यक्तिगत, सामाजिक और पारिस्थितिक संतुलन स्थापित करने के लिए एक **समग्र, सार्वकालिक और व्यावहारिक दर्शन** प्रदान करती है। यदि आधुनिक समाज और व्यक्ति इसे आत्मसात करें, तो न केवल व्यक्तिगत जीवन की गुणवत्ता में सुधार होगा, बल्कि वैश्विक स्तर पर शांति, न्याय और समरसता की स्थापना भी सम्भव होगी।

संदर्भ-सूची

1. ऋग्वेद, 10.190.1
2. बृहदारण्यक उपनिषद् 2.4.5
3. ऋग्वेद 10.191.2
4. मनुस्मृति, मेधातिथि भाष्य सहित, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
5. श्रीमद्भगवद्गीता 2.47
6. अथर्ववेद 12.1.12
7. ऋग्वेद 7.49.2
8. वही 1.115.1
9. श्रीमद्भगवद्गीता 3.14
10. ईशोपनिषद् 1
11. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ. 34-36
12. मुण्डकोपनिषद् 3.1.6
13. तैत्तिरीयोपनिषद् 1.11.1
14. ऋग्वेद 10.190.1
15. श्रीमद्भगवद्गीता 3.35
16. पतञ्जलि योगसूत्र 2.30
17. सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास 1, 3 एवं 7, पृ. 38-42, 78-82, 165-168.
18. यजुर्वेद 36.17
19. अथर्ववेद 19.9.14

20. कठोपनिषद् 1.2.23
21. श्वेताश्वतर उपनिषद् 2.15
22. ऋग्वेद 10.130.1
23. तैत्तिरीयोपनिषद् 1.9
24. ईशोपनिषद् 1
25. ऋग्वेद 5.60.5
26. अथर्ववेद 3.30.1
27. यजुर्वेद 36.5
28. महोपनिषद् 6.71
29. सत्यार्थप्रकाश, अष्टम समुल्लास, पृ. 181-184

संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. ऋग्वेद - सम्पादक: पं. रामगोविन्द त्रिवेदी; प्रकाशक: चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी; प्रकाशन-वर्ष: 2004
2. अथर्ववेद - सम्पादक: क्षेमकरणदास त्रिवेदी; प्रकाशक: चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी; प्रकाशन-वर्ष: 2006
3. यजुर्वेद (माध्यन्दिन शाखा) - सम्पादक: पं. रामगोविन्द त्रिवेदी; प्रकाशक: चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी; प्रकाशन-वर्ष: 2005
4. बृहदारण्यक उपनिषद् (शंकरभाष्य सहित) - सम्पादक: हनुमानप्रसाद पोद्दार; प्रकाशक: गीताप्रेस, गोरखपुर; प्रकाशन-वर्ष: 2018
5. ईशोपनिषद् (शंकरभाष्य सहित) - सम्पादक: हनुमानप्रसाद पोद्दार; प्रकाशक: गीताप्रेस, गोरखपुर; प्रकाशन-वर्ष: 2017
6. मुण्डकोपनिषद् - सम्पादक: हनुमानप्रसाद पोद्दार; प्रकाशक: गीताप्रेस, गोरखपुर; प्रकाशन-वर्ष: 2016
7. कठोपनिषद् - सम्पादक: हनुमानप्रसाद पोद्दार; प्रकाशक: गीताप्रेस, गोरखपुर; प्रकाशन-वर्ष: 2016
8. तैत्तिरीयोपनिषद् - सम्पादक: हनुमानप्रसाद पोद्दार; प्रकाशक: गीताप्रेस, गोरखपुर; प्रकाशन-वर्ष: 2015
9. श्वेताश्वतरोपनिषद् - सम्पादक: हनुमानप्रसाद पोद्दार; प्रकाशक: गीताप्रेस, गोरखपुर; प्रकाशन-वर्ष: 2016
10. महोपनिषद् - सम्पादक: हनुमानप्रसाद पोद्दार; प्रकाशक: गीताप्रेस, गोरखपुर; प्रकाशन-वर्ष: 2014
11. श्रीमद्भगवद्गीता - सम्पादक: हनुमानप्रसाद पोद्दार; प्रकाशक: गीताप्रेस, गोरखपुर; प्रकाशन-वर्ष: 2019
12. मनुस्मृति (मेधातिथि-भाष्य सहित) - सम्पादक: पं. गंगानाथ झा; प्रकाशक: चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी; प्रकाशन-वर्ष: 2001
13. पतञ्जलि योगसूत्र (व्यासभाष्य सहित) - सम्पादक: पं. रामशंकर भट्टाचार्य; प्रकाशक: चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी; प्रकाशन-वर्ष: 2003
14. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका - लेखक/सम्पादक: स्वामी दयानन्द सरस्वती; प्रकाशक: आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली; प्रकाशन-वर्ष: 2008
15. सत्यार्थप्रकाश - लेखक: स्वामी दयानन्द सरस्वती; सम्पादक: युधिष्ठिर मीमांसक; प्रकाशक: आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली; प्रकाशन-वर्ष: 2010